जैन धर्म–पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन

सुदीप कुमार रंजन

शोध छात्र, इतिहास विभाग, सामाजिक विज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सारांश

जैन धर्म में पर्यावरण संरक्षण एवं संवर्धन के लिए अनेक सिद्धान्तों का उपदेश दिया गया है इन सिद्धान्तों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि युग के प्रांरभ से ही जैन धर्म में मनुष्यों के साथ–साथ प्रकृति एवं पर्यावरण के प्रति कल्याणकारी दृष्टिकोण रखा गया है जिन समस्याओं के प्रति हम आज जागरूक हुए है, उनके समाधान जैन धर्म ने हजारों साल पहले प्रदान कर दिए थे प्रकृति एवं पर्यावरण की रक्षा एवं उसके संतुलन के संबंध में जैन धर्म में जिन सिद्धान्तों का उपदेश दिया गया है, वे वर्तमान में भी प्रासंगिक हैं।

हमारे पर्यावरण के मूल घटकों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है, जीव एवं अजीव। जैन धर्म में इन्हें चेतन और अचेतन नाम दिया गया है। जैन धर्म के अनुसार पुद्गल अचेतन है एवं जीव (आत्मा) चेतन है। जैन धर्म में स्पर्शन, रसना, ध्राण, चक्षु एवं कर्ण इन पांच इन्द्रियों के आधार पर जीवों का विभाजन किया गया है। इनमें जिन जीवधारियों के पास केवल एक इन्द्रिय अर्थात स्पर्शन हैं उन्हें स्थावर जीव कहते हैं। शेष दो इन्द्रिय से पांच इन्द्रिय वाले जीवों को त्रस जीव कहा गया है। स्थावर जीव में पृथ्वी जल, अग्नि, वायु एवं वनस्पति की गणना की गयी है। यही पंचतत्व पर्यावरण के भी मूलघटक भी हैं। इन स्थावरों को प्राण एवं चेतना से युक्त बनाने के कारण जैन धर्म यह भी मानता है कि इन्हें भी सुख दुःख की अनुभूति होती है क्योंकि सभी प्राणधारी सुख दुःख की अनुभूति करते हैं परन्तु कुछ जीव उसकी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते हैं।

''जैन धर्म'' आत्मलक्षी धर्म हैं। जैन साधना में आत्मा प्रमुख हैं। अहिंसा और दया इसके प्रमुख आधार हैं। भगवान महाबीर कहते हैं –

लोगो अकिट्टिमो खलु, अणाइणिहणो
सहावणिव्वत्तो।

जीवावजीवहिं फुडो, सव्वागासावयवो णिच्चो ।।

वस्तुतः लोक अकृत्रिम है, अनाधिनिधन है, स्वभाव से ही निर्मित है। जीव और अजीव द्रव्यों से व्याप्त है। संपूर्ण आकाश का ही एक भाग है तथा नित्य है।

''सत्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्यिउं''

सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नहीं चाहता।

''जावंति लोए पाणा, तसा अदुव थावरा।

ते जाणमजाणं वा, ण हणे णो वि घायए।।''

लोक में जितने भी त्रस–स्थावर जीव है उनका हनन न करें। जैन धर्म की सबसे बड़ी विशेशता यह है कि उसने पृथ्वी, अप्, तेज, और वायु को जीव समझा है सिर्फ पंचमहाभूत नहीं माना।

जल वायु जैसे प्राकृतिक तत्व सभी प्राणियों के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक हैं इनके अभाव में जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः जीवन की रक्षा के लिए प्रकृति में उपलब्ध संसाधनों का सीमित उपयोग करने की शिक्षा जैन धर्म में दी गयी है। जैन धर्म में बिना किसी प्रयोजन के किये जाने वाले कार्यो को अनर्थ बतलाकर उन्हें पाप क्रिया माना गया है। बिना प्रयोजन भूमि खोदना, वृक्ष आदि को उखाड़ना, दूब आदि हरीघास को खोदना एवं रौंदना फल–फूल पत्रादि को तोड़ना, पानी खीचंना, इन क्रियाओं को जैन धर्म में प्रमाद चर्या नामक अर्थदण्ड कहा है। जैन धर्म के इस सिद्धान्त में पर्यावरण के तत्वों के असिमित एवं अनावश्यक दोहन का निषेध हजारों वर्ष पूर्व ही किया गया था।

अहिंसा जैन धर्म का आधारभूत सिद्धांत है जैन धर्म में अहिंसा की परिधि इतनी व्यापक है कि इसमें मनुष्य पशु–पक्षियों के साथ–साथ सम्पूर्ण पर्यावरण

भी समाहित है अहिंसा धर्म की महानता का वर्णन करते हुए जैन धर्म में कहा गया है कि ''इस जगत में अणु से छोटी व दूसरी वस्तु नहीं है और आकाश से बड़ी कोई चीज नहीं है। इसी प्रकार अहिंसा व्रत से बड़ा कोई दूसरा व्रत नहीं है। यह अहिंसा सभी आश्रमों का हृदय है, सर्वशास्त्रों गर्भ है और सभी व्रतों का सार हैं। जैन शास्त्रों में एक अन्य स्थान पर लिखा है कि पर्वतों सहित स्वर्णमयी पृथ्वी का दान करने वाला पुरूष एक जीव की रक्षा करने वाले पुरूष के समान नहीं हो सकते। आध्यात्मिक दृष्टि से जैन धर्म में अहिंसा को संसार से मुक्ति का कारण माना गया है। लेकिन व्यवहारिक दृष्टि से अहिंसा के द्वारा पर्यावरण की भी रक्षा होती है। जैन धर्म में पर्यावरण के मूलतत्व जैसे जल वायु वनस्पति भूमि इत्यादि जीवों आदि की अनावश्यक हिंसा के साथ–साथ पशु–पक्षी आदि जीवों की श्रेणी में रखा गया है जैन धर्म में स्थावर जीवों को मारने का पूर्ण रूप से निशेध है।

पानी छानकर प्रयोग करने का सिद्धांत जैन धर्म का महत्वपूर्ण सिद्धांत है इस युक्ति में जल प्रदुषण से मुक्ति का रहस्य छिपा है। जैन धर्म में कपड़े से पानी छानकर पानी पीने का प्रावधान है। जैन धर्म में पानी छानने की प्रकिया बड़ी ही विशिष्ट है इसका कारण यह है कि यह छना हुआ जल हमारे स्वास्थ की रक्षा करता है। वर्तमान समय में भी जैन धर्म के मतानुयायी पानी को वस्त्र से छानकार पीते हैं।

सामाजिक संरचना में व्यक्ति की आजीविका का महत्वपूर्ण स्थान है शुरूवाती चरण में आजिविका का उद्देश्य स्वंय को एंव परिवार के भरण पोशण तक ही सीमित था इसलिए जैन धर्म के शुरूवाती चरण में भगवान ऋषभदेव ने मनुष्य की आजिविका के लिए कृशि, विद्या, वाणिज्य, शिक्षा, शिल्प आदि करने की प्रजा को उपदेश दिया था।

प्राचीन समय में उन व्यवसायिक साधनों का जैन धर्म में निशेध किया गया है जो किसी भी तरीके से पर्यावरण को क्षति पहुँचाते हैं जैसे वन काटकर लकड़ी का व्यापार करना, लकड़ी से कोयला तैयार करना जलाशयों को सुखाकर कृषि योग्य बनाना, जंगल जलाना, कीटनाशक दवाओं की व्यापार पर निषेध आदि इसके अन्तर्गत आता है। उपरोक्त कर्म पर्यावरण, प्रकृति के लिए घातक है इसका दूरगामी परिणाम पूरी मानव सभ्यता के अस्तित्व पर खतरा मड़रा सकता है इसलिए जैन–धर्म में सामाजिक एंव आर्थिक विकास हेतु कृशि आजीविका पर वरीयता एवं कृषि को सर्वश्रेष्ठ उद्यम माना गया है। अति भोगवादी प्रवृत्ति एवं उच्च महत्वाकांक्षाओं के कारण मनुष्य प्रकृति का दोहन करके अपने ही अस्तित्व को खतरे में डाल रहा है इसलिए जैन धर्म में यह उपदेश दिया गया है कि वयक्ति को आवश्यकता से अधिक किसी भी वस्तु का संचय नहीं करना चाहिए। इन सब बातों का एक ही सार है कि प्रकृति एवं पर्यावरण पर समाज के प्रत्येक वर्ग को समान अधिकार प्राप्त है।

जैन धर्म में आहार पर विशेष चर्चा किया गया है। मांसाहार के लिए किसी भी जीव की हत्या करना जैन धर्म में पूर्ण रूप से निशेध है। मांसाहार के उत्पादन में प्रकृति प्रदत्त भोजन एंव पेय पदार्थ अधिक लगता है जबकि शाकाहारी आहार में प्रकृति प्रदत्त आहार में कम मात्रा लगती है जो पर्यावरण के अनुकुल है। जैन धर्म में अहिंसा के सिद्धांत का मुख्य उद्देश्य यह है कि समस्त जीव समान है एक दूसरे पर निर्भर हैं और इनका एक – दूसरे से अस्त्वि भी है। कहने का अर्थ यह है कि एक प्राणी के विनाश से सभी प्राणी पर प्रभाव पड़ता है प्रकृति के सभी घटकों में मनुश्य सर्वोपरि है इसलिए उसका यह भी दायित्व है कि वह प्रकृति प्रदत्त वनस्पति, पशु–पक्षी, आदि की रक्षा का भार उस पर और बढ़ जाता है नही तो पर्यावरण के संरक्षण से ही हम सभी जीवों की अस्तित्व सारगर्मित है।

सन्दर्भ सूची

1. नियमसार 8
2. समणसुत्तं गाथा क्रमांक 651
3. समणसुत्तं, गाथा क्रमांक 148
4. वही, गाथा क्रमांक 149
5. स्वामीकुमार /कार्तिकेयानुप्रेक्षा/343

6. आचार्य अमृतचन्द्र / पुरूशार्थ सिद्धपाय / 143
7. भगवती अराधना, पृ0 784–790
8. अ0 श्रा0 11 / 5
9. सगारधर्मा, 4 / 11
10. पुरूशार्थ सिद्धपाय पृ0 77
11. सगारधर्मामृत, 2 / 17
12. सगारधर्मामृत, 2 / 14
13. आदिपुराण 16 / 179–180
14. सगारधर्मा, 5,21,22,23
15. रत्नकरण्ड श्रावकचार, पृ0 61
16. पुरूशार्थ सिद्धपाय पृ0 65–68
17. तत्वार्थ सूत्र 5 / 2